त्रयी चिंतन

સંસ્કૃત સાહિત્ય અને દર્શનોમાં મનોવૈજ્ઞાનિક અભિગમ

PART - I

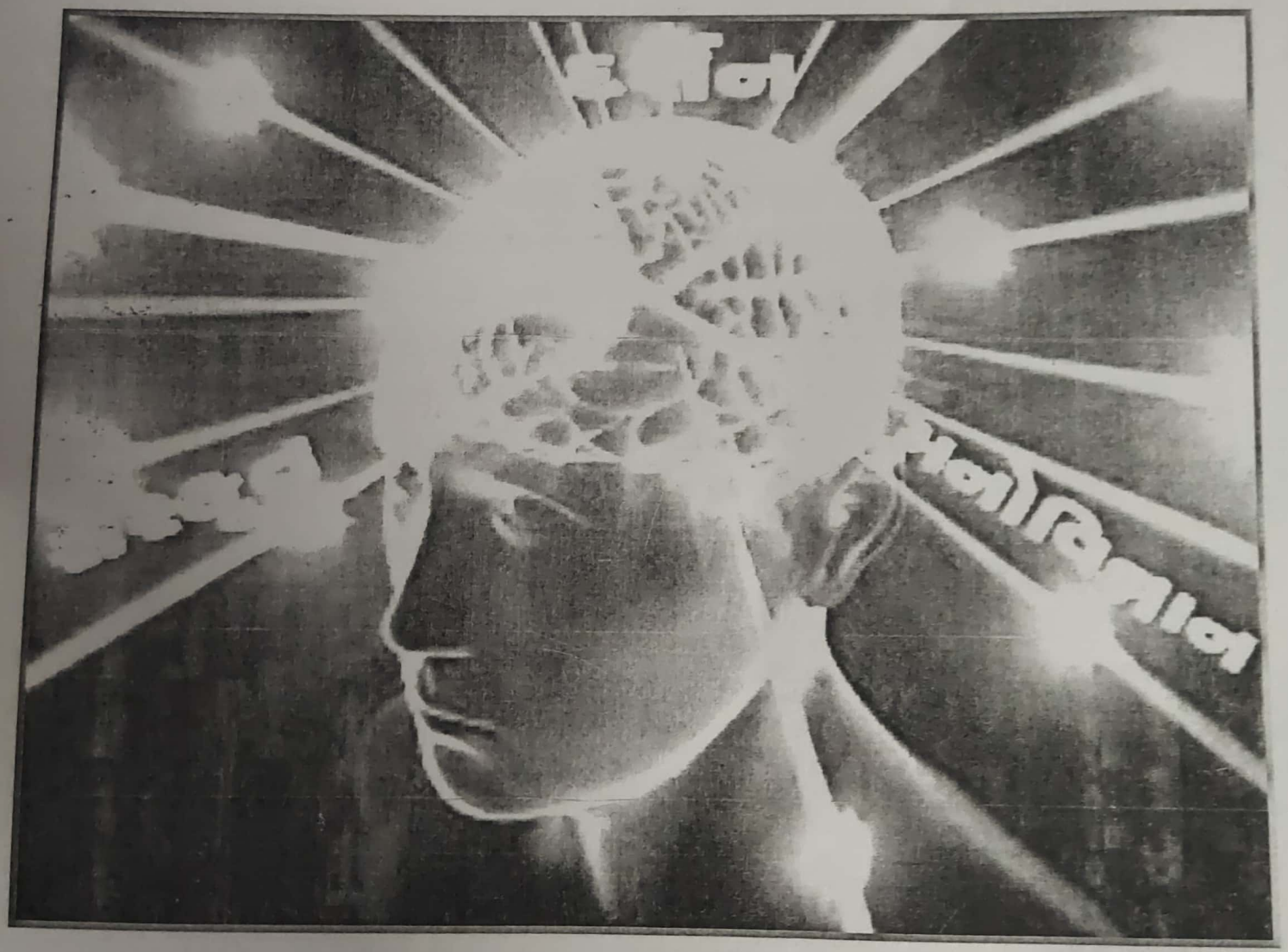

Scanned with CamScanner

त्रयी चिंतन (TRAYEE CHINTAN)
સંસ્કૃત સાહિત્ય અને દર્શનોમાં મનોવૈજ્ઞાનિક અભિગમ

© **Sampaadak** - Prin. Dr. R. P. Mehta

©**Sahsampaadak** - Dr. A. M. Chocha
- Prof. S. J. Vaghela
- Dr. N. R. Suba

(પ્રસ્તુત પુસ્તકમાં રજૂ કરેલી દરેક બાબતોની જવાબદારી જે તે લેખનકર્તાની છે.)

પ્રાપ્તિ સ્થાન : Smt. C. P. Choksi Arts and Shree P. L. Choksi Commerce College, Veraval.

ISBN No. 978-93-86103-14-7

પ્રથમ આવૃત્તિ : ૨૦૧૬

કિંમત : ₹ ૩૫૦/--

Publisher :
PRINCIPAL
Smt. C. P. Choksi Arts and
Shree P. L. Choksi Commerce College.
Veraval.

Setting & Printing
Kamlesh Prakashan Mandir
G-52, Neo Square, P.N. Marg,
Near Income Tax Office,
Jamnagar - 361008.
Contact : 9879427072 / 9824163463
E-mail : kamleshprakashan@gmail.com

Scanned with CamScanner

स्थायी भावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

प्रो. अर्चना दुबे
श्रीसोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी, वेरावल-जिल्ला : गीर सोमनाथ

स्थायी भावों का जो निरूपण साहित्यशास्त्र में किया गया है वह विशुद्ध मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है। मनोवैज्ञानिक के मूल सिद्धान्त आज के समान पूर्व काल मे भी ज्ञात थे। केवल उनकी अभिव्यक्ति शैली में भेद है। आधुनिक मनोविज्ञान जिनको मूल-प्रवृत्तियो से सम्बद्ध 'मनः संवेग' कहता है उन्हीं को साहित्यशास्त्र में 'स्थायी भाव' नाम से कहा गया है। नवीन मनोविज्ञान के 'मनः संवेग' और प्राचीन साहित्यशास्त्र के 'स्थाय भाव' एक ही तत्त्व के विभिन्न नाम है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैगडूगलने १४ प्रकार की मूल प्रवृत्तियाँ और उनसे सम्बद्ध १४ मनः संवेग माने हैं। मूल प्रवृत्ति की परिभाषा करते हुए उन्होंने लिखा है – ''मूल प्रवृत्ति वह प्रकृति-प्रदत्त शक्ति है जिसके कारण प्राणी किसी विशेष प्रकार के पदार्थ की ओर ध्यान देता है और उसकी उपस्थिति मे विशेष प्रकार के संवेग या मनः क्षोभ का अनुभव करता है।''

मैगडूगलने जो चौदह प्रकार की मूल प्रवृत्तियाँ मानी है, उनकी तथा उनके साथ सम्बद्ध मनः संवेगों की तालिका भी उन्होंने प्रस्तुत की है। मैगडूगल की बनायी हुई तालिका में पहला स्थान मूल प्रवृत्तियों का दिया गया है और दूसरा स्थान सम्बद्ध मनः संवेगो को, परन्तु जब वह मनोविज्ञान के विषय का विवेचन कर रहे है तब उन्हें मनोधर्म या मनः संवेगों को ही प्रधानता देनी चाहिए थी। इसका अभिप्राय यह है कि उन्हें अपनी तालिका में मूल प्रवृत्तियों के बजाय मनः संवेगों को प्रथम स्थान देना चाहिए था और उसके बाद मनः संवेगो से सम्बद्ध मूल प्रवृत्तियों का निर्देश करना चाहिए था, क्योंकि मूल प्रवृत्तियों के कारण, मूल प्रवत्तियों को प्रेरणा देने वाली शक्ति, मनः संवेग ही है। इस दृष्टि से हमने उस तालिका के क्रम में परिवर्तन कर मनः संवेग को पहले तथा मूल प्रवृत्ति को पीछे कर दिया है। तदनुसार मैगडूगल के चौदह मनः संवेगो तथा मूल-प्रवृत्तियों की सूची और उनके साथ स्थायी भावों तथा रसों का समन्वय करके दोनों की तुलनात्मक सूची नीचे प्रस्तुत कर रहे है। इस सूची को देखने से मनोव्यापारो के मनः संवेगात्मक नव्य विभाजन और स्थायी भावात्मक प्राचीन विभाजन में विस्मयजनक समता प्रतीत होगी।

मनः संवेगों और स्थायी भावों का तुलनात्मक चित्र

क्रम	नव्य मनोविज्ञान के अनुसार		प्राचीन साहित्यशास्त्र के अनुसार	
१	भय	पलायन तथा आत्मरक्षा	भय	भयानक-रस
२	क्रोध	युयुत्सा	क्रोध	रौद्र-रस
३	घृणा	निवृत्ति, वैराग्य	जुगुप्सा	बीभत्स-रस
४	करुणा, दुःख	शरणागति	शोक	करुण-रस
५	काम	कामप्रवृत्ति	रति	श्रृङ्गार-रस
६	आश्चर्य	कौतूहल-जिज्ञासा	विस्मय	अद्‌भूत-रस
७	हास	आमोद	हास	हास्य-रस
८	दैन्य	आत्मदीनता	निर्वेद	शान्त-रस
९	आत्मगौरव, उत्साह	आत्माभिमान	उत्साह	वीर-रस
१०	वात्सल्य, स्नेह	पुत्रैषणा	वात्सल्य, स्नेह	वात्सल्य-रस

इसके अतिरिक्त (१) भोजनान्वेषण की प्रवृत्ति, (२) संग्रह की प्रवृत्ति, (३) सामूहिकता की प्रवृत्ति, (४) विधायकता या रचना की प्रवृत्ति। इन चार प्रकार की मूल प्रवृत्तियों का भी उल्लेख मैगडूगलने किया है। परन्तु

Scanned with CamScanner

उनका सम्बन्ध रस से नहीं है और उनको मौलिक मनः संवेग कहना भी उचित नहीं प्रतीत होता है। प्राचीन भारतीय आचार्यों ने मौलिक रूप से नौ प्रकार के मनः संवेग मानकर साहित्यशास्त्र मे नौ रसों या नौ प्रकार के स्थायी भावों की स्थापना की है, इस प्रकार स्थायी भावों का सिद्धान्त प्राचीन मनोविज्ञान के सिद्धान्त पर आधारित है। अधिक सूक्ष्म विवेचन करने वाले धनिक तथा धनञ्जय आदि आचार्यों ने नौ मौलिक मनः संवेगो अथवा स्थायी भावों के स्थान पर केवल चार स्थायी भाव या चार रस मानने का भी निर्णय किया है और शेष रसों की उत्पत्ति उन चार से ही मानी है। उनका कहना है कि रसानुभूति के काल में चित्त की विकास, विस्तार, विक्षोभ तथा विक्षेप रूप चार प्रकार की अवस्थाएँ होती है इसलिए चार ही रस मानने चाहिए। दशरूपककार ने इस का विवेचन करते हुए लिखा है –

विकासविस्तारक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः।

श्रृङ्गारवीरबीभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात् हास्यद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि॥

अर्थात काव्य के परिशीलन से आत्मा में आनन्द की अनुभूति नाम स्वाद या रसास्वाद होता है। आत्मानन्द चित्त के विकास, विस्तार, विक्षोभ तथा विक्षेपरूप से चार प्रकार का होता है। चित्त यह चार प्रकार की अवस्था क्रमशः श्रृङ्गार, वीर, बीभत्स तथा रौद्र रस में होती है। शेष हास्य, अद्भुत, भयानक, तथा करुण रस में भी चित्त की ही अवस्थाएँ होती हैं। प्राचीन साहित्यशास्त्रियों ने रस और उनसे सम्बद्ध स्थायीभाव का सम्बन्ध पूर्णतः मनोविज्ञान के आधार पर की थी। आज का मनोविज्ञान स्थायीभावों की मनोवैज्ञानिकता का समर्थन कर रहा हैं।

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च। रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।[१]

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः। व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥[२]

व्यवहारदशा में मनुष्य को जिस-जिस प्रकार की अनुभूति होती है उसको ध्यान में रखकर प्रायः आठ प्रकार के स्थायी भाव साहित्यशास्त्र में माने गये हैं। काव्यप्रकाशकार ने उनकी गणना इस प्रकार की है–

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा। जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः॥[३]

अर्थात् (१) रति, (२) हास (३) शोक, (४) क्रोध, (५) उत्साह (६) भय, (७) जुगुप्सा या घृणा और (८) विस्मय ये आठ स्थायी भाव कहलाते हैं। उनके अतिरिक्त निर्वेद को नौवाँ स्थायी भाव माना गया है। काव्यप्रकाशकार ने लिखा है –

निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः। (सू.४७)

इसी प्रकार नौ स्थायिभाव और उनके अनुसार ही (१) श्रृङ्गार, (२) हास्य, (३) करुण, (४) रौद्र, (५) वीर, (६) भयानक, (७) बीभत्स, (८) अद्भुत और (९) शान्त ये नौ रस माने गये हैं।

श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः। बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ रसाः स्मृताः॥[४]

यै नौ स्थायी भाव मनुष्य के हृदय में स्थायी रूप से सदा विद्यमान रहते हैं, इसलिए 'स्थायी भाव' कहलाते हैं। सामान्य रूप से वे अव्यक्तावस्था में रहते हैं, किन्तु जब जिस स्थायी भाव के अनुकूल विभावादि सामग्री प्राप्त हो जाती है तब वह व्यक्त हो जाता है और रस्यमान या आस्वाद्यमान होकर रस रूपता को प्राप्त हो जाता है।

लोक मे रति आदिरूप स्थायी भाव को जो कारण, कार्य और सहकारी होते हैं, ये यदि नाटक में काव्य में (प्रयुक्त) होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं और उन विभाव (आलम्बन या उद्दीपन) आदि (रूप कारण, कार्य तथा सहकारियों के योग से व्यक्त वह (रति आदिरूप) स्थायी भाव 'रस' कहलाता है। इस प्रकार स्थायीभावों का सिद्धान्त प्राचीन मनोविज्ञान के सिद्धान्त पर आधारित है।

१ काव्यप्रकाशः ४ / २७ २ काव्यप्रकाशः ४ / २८

३ काव्यप्रकाशः ४ / ३९ ४ काव्यप्रकाशः४/३१

Scanned with CamScanner